मानव की रुचि – एक चिन्तन

मानव जिस विषय में रुचि लेता है, उसी की तरफ उसका झुकाव होता हैं और उसी वस्तु को वह प्राप्त करना चाहता है। दुःख दो जगत है– एक भीतर का जगत् और बाहर का। भीतर के जगत को हम पूर्वजन्म के आधार पर लेकर आते है। पूवर्जन्म से तात्पर्य हैं–प्रारब्ध कर्म से। प्रारब्ध कर्म वह कर्म होता हैं जो हम पूर्वजन्म में कर चुके हैं और वह बिना फल दिये हुए इकट्ठा रहता हैं और वर्तमान जन्म में वह देश काल और परिस्थिति के अनुसार समय–समय पर फल देता है। इसमें हम परिवर्तन नहीं कर सकते। रुचि का सम्बन्ध कर्म से होता है। गीता में कर्म, अकर्म और विकर्म के सम्बन्ध से कर्म के तीन भेद किये गये हैं। सकामभाव से की गयी शास्त्रविहित क्रिया को कर्म कहते हैं। फलेच्छा, ममत्व और आसक्ति से रहित होकर केवल दूसरों के हित के लिये किया गया कर्म अकर्म बन जाता है। शास्त्रविहित कर्म भी यदि दूसरों का अहित या दुःख पहुंचाने के भाव से किया जाय तो वह विकर्म बन जाता है। कर्म तो सभी करते हैं किन्तु वह कर्मयोग तब बनता है जब दूसरों के लिये निरासक्त भाव से कर्म किया जाय। कर्म संसार के लिये होता है और योग अपने लिये होता है, इस बात को ध्यान में रखकर विवेकी पुरुष सदा कर्म को कर्मयोग करने के लिए यत्नवान् होता है।

कर्म को क्रियमाण संचित और प्रारब्ध तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। क्रियमाण कर्म को संचीयमाण कर्म भी कहते हैं। यह इस जीवन और वर्तमान काल में होने वाला कर्म है। इसका फल भविष्य में मिलेगा। वर्तमान से पहले इस जन्म में किये हुये अथवा जन्मान्तर के अनेक मनुष्य जन्म में किये हुये कर्म जो संगृहीत हैं, वे संचित कर्म कहलाते हैं। इसके फल का अभ्युदय नहीं हुआ रहता। यह संस्कार बनकर समय की प्रतीक्षा करता है। संचित कर्मों में से जो कर्म फल देने के लिये उन्मुख होते हैं अर्थात् वर्तमान जीवन में हम जो भी फल भोग रहे हैं वह प्रारब्ध कर्म का परिणाम है। संचित कर्मों में से ही फलोन्मुख कर्मों को लेकर प्राणी के प्रारब्ध का निर्माण होता है, उसे दैव या भाग्य भी कहते हैं। प्रारब्ध कर्म का भोग करना प्राणीमात्र के लिये अनिवार्य होता है। शरीरेन्द्रियादि की सत्ता प्रारब्ध कर्मों के अधीन है जब तक प्रारब्धकर्म अवशिष्ट हैं तब तक शरीरादि नष्ट नहीं हो सकते। किसी शक्तिमान् पुरुष द्वारा फेंका गया बाण तब तक नहीं रुक सकता, जब तक कि उसका वेग कम नहीं हो जाता,

वैसे ही जिस प्रारब्ध कर्म के फलस्वरूप यह शरीर उपलब्ध हुआ है उस कर्म का वेग जब तक क्षीण नहीं होता तब तक शरीरादि निवारण सम्भव नहीं। अर्थात् प्रारब्ध कर्म को अवश्य भोगना पड़ता है। इसे भोगने के लिये प्राणियों की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है– स्वेच्छा पूर्वक, अनिच्छा या देवेच्छा पूर्वक और परेच्छा पूर्वक। यदि किसी भी मनुष्य को किसी कार्य में लाभ होता है या हानि होती है तो यह लाभ या हानि उसके शुभ या अशुभ कर्मों से बने हुए प्रारब्ध के फल हैं। कार्य का आरम्भ व्यक्ति स्वेच्छा से करता है, किन्तु उसे जो लाभ या हानि होती है वह उसके शुभाशुभ कर्मों से बने हुए प्रारब्ध का फल है। कभी–कभी मनुष्य को अकल्पित वस्तु का लाभ हो जाता है, जिसकी उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी। इसी प्रकार अकल्पित हानि भी अकस्मात् हो जाती है। मार्ग में जाते समय बिजली गिर जाना, कोई मूल्यवान् वस्तु प्राप्त हो जाना आदि। सुखरूप भोग जिसको प्राप्त करने की मन में सम्भावना या इच्छा न थी अनायास ही देवकृपा से अपने आप प्राप्त हो गयी अनिच्छा प्रारब्ध है। जहां किसी व्यक्ति को दूसरों की इच्छा से विशेष लाभ या विशेष हानि होती है, यह लाभ या हानि उसके शुभ अशुभ कर्मों से बने हुये प्रारब्ध के फल तो हैं, किन्तु उसे जो लाभ हुआ था, वह किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा से हुआ था। इसी प्रकार उसे जो कुछ हानि हुयी थी, वह किसी दूसरे व्यक्ति ने अपनी इच्छा से कर दी थी। इस प्रकार उसे इस प्रारब्ध का भोग परेच्छा पूर्वक होता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में अर्थ और काम की प्राप्ति में प्रारब्ध की मुख्यता तथा पुरुषार्थ की गौणता होती है तथा धर्म और मोक्ष की प्राप्ति में पुरुषार्थ की मुख्यता तथा प्रारब्ध की गौणता होती है। समस्त प्राणियों में मनुष्य योनि की यह विशेषता है कि वह प्रारब्ध कर्म का भोग करते हुए क्रियमाण कर्म को करता है। मनुष्य योनि सुख–दुःख से ऊपर उठकर मोक्ष प्राप्ति के लिये ही परिकलपित है। इन उक्तियों में प्रारब्धकर्म के भोग को अनिवार्य माना गया है, किन्तु मनुष्य योनि की यह विशेषता है कि वह इस जन्म में ही सत् कर्मानुष्ठानपूर्वक अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर ले, क्योंकि यह कर्म योनि या साधन योनि है। देवयोनि, कीड़े–मकोड़े पशु–पक्षी ये समस्त योनियां भोग योनियां हैं। ये केवल अपने कर्मफल भोगों के लिये आते हैं। वर्तमान जीवन में इनके द्वारा किये गये कर्म फलदायक नहीं होते, क्योंकि इनके

द्वारा कर्म संकल्प पूर्वक नहीं किये जाते। मनुष्य योनि ही कर्मयोनि है, जो इस जन्म में सत्कर्मानुष्ठान पूर्वक मोक्ष प्राप्त करता है। भीतर के सुख के अनुसार प्रकृति और रुचि बदलती रहती है। एक पुद्गल में ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड में पुद्गल समाया हुआ है। जिसमें मानवता होती हैं, जिसमें जीयो और जीने दो की भावना होती हैं वही मानव श्रेष्ठ है। अच्छे कर्मों में रुचि लेकर उसे करना चाहिए जिससे देश समाज और राष्ट्र का हित हो।